B.Ed.part =1,paper-VIII B,
Presented by Dr.Pallavi
Topic- राजयोग के आठों चरण और उनका महत्व (Eight Steps of Raja Yoga and their Significance)

महर्षि पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंग हैं जिसका वर्णन साधनापाद के 29वं सूत्र में है--

"यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोष्टावङ्गानि

ये राजयोग के आठ अंग हैं

1.यम
2.नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6.धारणा
7. ध्यान
8.समाधि

योग को ये सारी क्रियाएँ महर्षि पतंजलि के लिखने के बहुत पहले अविष्कार हो चुकी थी तथा साधना में प्रचलित थी। अत: वह इन साधनाओं के अविष्कारक नहीं थे, बल्कि इन साधनों को निचोड़ रूप में सूत्र रूप प्रदान किए, जो अति वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक है।

दत्तात्रेय संहिता में योग के अंगों का वर्णन इस प्रकार किया गया है ।

यमश्च नियम श्चैव आसनं च ततः परम्।

प्राणायाम श्च अर्थः स्यात् प्रत्याहार श्च पंचमः।।

पष्ठी तु धारणा प्रोक्ताः ध्यानं सप्तमुच्यते।

समाधिरष्टमः प्रोक्तः सर्व पुण्यफलप्रदः।।

इसी प्रकार, मण्डलब्राह्मणोपनिषद तथा जाबालदर्शन उपनिषद में भी योग के इन आठ अंगों का वर्णन किया गया है। निरूत्तर तंत्र में भी योग के छः अंग ही बताए गए हैं। हठयोग प्रदीपिका में भी योग के छ: अंग ही माने गए हैं। इन दोनों में यम तथा नियम का वर्णन नहीं किया गया है। जबकि यम तथा नियम व्यावहारिकता की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है। बाह्य जगत के बंधन अर्थात् समाज तथा परिवार के मोह से अपने आप को निकालकर योग साधना के अनुरूप ढालने में यम तथा नियम अपनी अहम भूमिका निभाते हैं।

2.4 यम (Yam)
यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। पतंजलि योग सूत्र में वर्णित पाँच यम है:

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः 130।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन पाँच गुणों की साधना यम कहलाता है।

2.4.1 अहिंसा

अहिंसा का अर्थ सिर्फ अपनी क्रियाओं में हिंसा करने से नहीं है, बल्कि व्यक्ति अपने मन, कर्म, वचन से भी दूसरों को तकलीफ न पहुँचाए। अहिंसा का सरल अर्थ हिंसा का अभाव है। हिंसा हर व्यक्ति में जन्मजात रूप से उपस्थित होता है, किसी में कम, तो किसी में ज्यादा। ज्यादातर लोग अनजाने में हिंसा करते हैं। कुछ हिंसा में आनंद का अनुभव करते हैं। योग अभ्यासी के लिए आवश्यक है कि अपने मन के इन भावों के प्रति सजग हो तथा अभ्यास द्वारा इससे दूर रहें। अपने संपर्क में आने वाले जीव जंतु यथा व्यक्ति, पशु पक्षी, पेड़-पौधे आदि को कोई हानि न पहुँचाए। यह हानि, वाणी या कर्म दोनों से होने की संभावना रहती है। अतः मे इन दानों के प्रति सजग रहना चाहिए तथा इन्हें नियंत्रण में रखना चाहिए। इस स्थिति के प्राप्त हो जाने में भी हिंसा के भावों का उठना बंद हो जाता है। हमें यह भी समझना होगा कि केवल बाहरी व्यवहार में हिंसा का न होना हो अहिंसा नहीं है, बल्कि मन से हिंसा मिट जाए और अन्य किसी को कष्ट पहुचाने का ख्याल भी न आए । यह स्थिति प्राप्त करना सहज नहीं है । इस प्रक्रिया में वर्षो लग जाते है । साधक से यह अपेक्षा की जाती है कि आरंभ से ही इसमे लग जाए क्योंकि हिँसा का भाव साधना के मार्ग में बाधक है । यह एकता धारण करने तथा ध्यान के लिए आवश्यक है। अहिंसा को अपनाए बिना साधक योग के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता है।

2.4.2 सत्य

सत्य के नियम का पालन भी अति आवश्यक है। व्यक्ति को हमेशा सत्य बोलने का प्रयास करना चाहिए। सत्य बोलने वाला व्यक्ति निर्भीक तथा स्पष्ट होता है। सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों के प्रति ईमानदार होता है। हर वस्तु, व्यवहार, मनोभाव, विचार आदि को सही रूप में देखना तथा ग्रहण करना भी सत्य का ही रूप है। सत्य बोलने वाला व्यक्ति निर्मीक तथा स्पष्ट होता है। सत्य का आचरण व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से प्रकट होता है। दैनिक जीवन में इसे वाणी से जोड़कर देखा जाता है। सत्य के अभ्यास से हम अपने मन पर पड़े आवरण तथा विकारों को हटाकर स्वयं को मूल रूप तक पहुँचा सकते हैं। सत्य को ईश्वर भी कहा गया है। सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों के प्रति ईमानदार होता है। उसका जोवन सरल होता है तथा वह आध्यात्मिक रूप से उच्च स्थिति को प्राप्त करने में सक्षम होता है।

2.4.3 अस्तेय

यह तीसरा यम है। अस्तेय का अर्थ है दूसरे के स्वत्व का हरण नहीं करना अर्थात् लोभ न करना। मनुष्य स्वभाववश अपनी इच्छाओं तथा आवश्यकताओं को बढ़ाता जाता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसके के लिए भी अहितकर होती है। मानव का यह स्वभाव योग साधक के लिए धातक है। यह प्रवृत्ति उसे दूसरों के अधिकार को हनन करने पर भी मजबूर कर देता है। इससे उसके मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जो उसके विचार शक्ति को केन्द्रित होने में बाधक बनाता है। योग साधक को इस मनोवृत्ति से बचे रहने का अभ्यास करना चाहिए, अन्यथा उसकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

2.4.4 ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ है कामवासना से परहेज करना। किन्तु योग में इसका अर्थ है संयमी। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है ब्रह्म में आचरण करना। ब्रह्म का तात्पर्य है चेतना को उच्चतम अवस्था। अत: जो व्यक्ति चेतना की

उच्चतम अवस्था प्राप्त करना चाहता है, वही ब्रह्मचर्य का पालनकत्ता है। इसके मूल में स्वयं को चेतना की उच्च स्थिति में रखना है।

ब्रह्मचर्य का यह अर्थ नहीं है कि उस व्यक्ति विशेष ने विवाह किया है अथवा नहीं। गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है।

काम ऊर्जा (Sex energy) प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है। योग विज्ञान के अनुसार, यदि काम का प्रवाह ऊपर की ओर हो, तो व्यक्ति उच्चतम सीमा तक पहुँचने की क्षमता रखता है। काम शक्ति मनुष्य के अंदर छिपी हुई बड़ी शक्ति है, जिसका उपयोग विकास के लिए भी हो सकता है और पतन के लिए भी। यदि व्यक्ति प्रेम की प्रेरणा से महान कार्य सम्पन्न करे तो काम ऊर्जा का प्रवाह ऊपर की ओर है। यदि केवल वासना पूर्ति के लिए इसका उपयोग करता है, तो यह कामशक्ति का अधोगति है। उदाहरणस्वरूप तुलसीदास के जीवन की घटना को ले सकते हैं। उनकी पत्नी की एक सीख ने उनकी काम ऊर्जा के प्रवाह की दिशा बदल दी। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब प्रेम ने व्यक्ति को आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। मीरा का
कृष्ण प्रेम भी ऐसा ही था।

वास्तव में काम शक्ति परमाणु शक्ति की तरह है। इसका ऊपर की ओर प्रवाह ब्रह्मचर्य है। इस शक्ति की तीव्रता इतनी अधिक है कि जो इसे साध ले, उसकी क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि को अन्य इसकी बराबरी नहीं कर सकता। योग की भाषा में यह कुण्डलिनी का आरोहण है जो ब्रह्म मिलने की यात्रा है।

2.4.5 अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है किसी से कोई दान न लेना। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संचय नहीं करने की प्रवृत्ति को अपनाना है। वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक संचय व्यक्ति में मोह पैदा करता है, जो योग के मार्ग में बाधक है। सारा संसार, यहाँ तक कि यह शरीर भी नष्ट होने वाला है। फिर भी व्यक्ति स्वयं को इतना बाँध लेता है कि उससे अलग होने की कल्पना भी नहीं कर पाता है। नश्वर चीजों के प्रति यह मोह एक बोझ के समान है। यह मोह रूपी बोझ, योग की यात्रा को कठिन बना देती है योग साधक के लिए आवश्यक है कि नश्वर वस्तुओं से मानसिक लगाव कम करें; तभी अविनाशी को प्राप्त करने के प्रयास में सफलता प्राप्त कर सकता है।

धर्मों में दान को अपरिग्रह माना गया है निश्छल भाव से दिया गया दान अपरिग्रह को श्रेणी में आता है। दान देने से किसी व्यक्ति का भला नहीं होता है बल्कि आपके स्वयं का भला होता ह को आप में अपरिगाह का भाव लाता है। यह भाव ही दान की सार्थकता है। स्वार्थवश दिया गया दान, अपरिग्रह नहीं श्रेणी में नहीं
आता है।

2.4.6 यम का महत्व

यम का आधार हमारे सामाजिक जीवन का अनुशासन है। व्यक्ति समाज में हर क्षण दूसरे से व्यवहार करने में स्वयं को उलझाये रखता है। जिसमें वह अपना सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ कर देता है। यम का अभ्यास उसे इस स्थिति से निकालकर योग के लिए जागरूक बनाता है। योग का आरंभ होता है। यम की व्यवस्था का अर्थ है आप जिस स्थिति में हैं, वहीं से योग की शिक्षा का प्रारंभ हो, ताकि यह सहज लगे। यम सामाजिक व्यवहार को नियमित करता है जो इसका बाह्य रूप है और आंतरिक रूप से यह मन को योग मार्ग में जाने लिए प्रवृत करता है। मन की शक्तियों को जगाता है तथा मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करता है। अर्थात् योग करने के लिए मन को पूरी तरह तैयार करता है, जिससे आगे की यात्रा निर्बाध रूप से पूरी कर सकें।

वस्तुतः यम अपने आप में साधना है। यदि इनमें से किसी एक को भी पूरी तरह साध लिया जाए, तो व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार तक पहुंच सकता है। पतंजलि के अनुसार यमों का निर्बाध पालन व्यक्ति को 'महाव्रत ' बना देता है। जाति देशकाल समयानवछिन्नाः सार्वभौमा महाव्रत (प० या० द0 2-31)

महाव्रत व्यक्ति में अपूर्व शक्ति का अभ्युदय करते है, जिससे व्यक्ति प्रचण्ड गति से अपने लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होता है। यह मनुष्य को छिपी शक्तियों को घनीभूत एवं एकाग्र कर सारो बाधाओं तथा आवरणों को बेचने को ऊर्जा पैदा करता है।

2.5 नियम (Niyam)

यम के बाद नियम आते हैं। जहाँ यम व्यक्ति के जीवन को सरल एवं सामंजस्यपूर्ण बनाते हैं, वहाँ नियम द्वारा आंतरिक जीवन में अनुशासन लाया जाता है। नियम भी पांच हैं ; शौच संतोषतप स्वाच्यायेण्वर प्राणिधानि नियम: l32।।

1. शौच
2. संतोष
3.तप
4. स्वाध्याय
5. ईश्वर प्राणिधान

2.5.1 शौच
शौक का अर्थ स्वच्छता या शुद्धता से है। स्वच्छता का संबंध शरीर तथा मन दांनों की शुद्धता से है। शरीर को शुद्धता, बाह्य शुद्धता तथा मन की शुद्धता आंतरिक शुद्धता कहलाती है । शारोरिक अंगों को शुद्धता के लिए मिट्टी, जल आदि वस्तुओं का उपयोग किया जाता है जैसे स्नान। इससे व्यक्ति बाका रूप से शुद्ध होता है तथा शरीर रूपी साधन दृढ़ होता है। शरीर के प्रति नश्वर भाव मन में आता है, जिससे शरीर के प्रति मोह में कमी होती है। पतंजलि के अनुसार, इससे संसर्ग की इच्छा में भी न्यूनता आती है। यह भाव मन को शरीर की ओर से निश्चित और स्वतंत्र करता है।

आंतरिक शुद्धता से अंतःकरण की शुद्धि का पता चलता है। लोभ, मोह, क्रोध, घूणा, अहंकार आदि अशुद्धियाँ मन को एकाग्र होने में बाधा उत्पन्न करती है। इन पर नियंत्रण कर प्रेम, करुणा, उदारता आदि भावों का आवाहन मन को शुद्ध करता है। साधक को चाहिए कि मन के विकारों को निराकरण इससे आंतरिक शुद्धता आती है।

आंतरिक शुद्धता से प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होती है। सत्वशुद्धि सौमनस्यैकाग्येन्द्रिय जयात्मदर्शनयोग्यत्वानि। (पा० यो० द० 2-41)

2.5.2 संतोष

वर्तमान जीवन हमें कुछ प्राप्त है; उतने में ही प्रसन्न रहना संतोष कहलाता है । इस स्थिति में व्यक्ति अधिक प्राप्ति की इच्छा नहीं रखता है । जीवन ऐसी स्थितियाँ आती हैं, जब हमें लगता कर्म हमने अच्छा किए, परन्तु उतनी सफलता नहीं मिली। इस दिशा हम दूसरों तुलना भी कर बैठते हैं और असंतुष्ट हो जाते है । योग साधक को इन बातों से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए। इसमें आत्मसंतुष्टि तथा पूर्णता का भाव व्यक्ति अंदर आ जाता है। संतोष भाव उत्पन्न होते ही व्यक्ति के वासनात्मक पहलू खत्म लगते हैं।

वैज्ञानिक रूप देखें तो हमारे जीवन पर अनेक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष शक्तियों प्रभाव पड़ता है,जिसपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता है। ऐसी स्थिति किसी कर्म का फल क्या होगा? इसकी गणना करना असंभव है। ऐसी स्थिति में फल से संतोष न करना तनाव और कुँठा को जन्म देता है, जिससे मस्तिष्क पर पड़ वाले व्यर्थ के भार से बचेंगे, जो साधक के लिए अत्यंत आवश्यक है। धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा जीवन में संतों की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर जो आनंद मिलता है,उसकी बराबरी कोई सुख नहीं कर सकता है।

संतोषदनुत्तम सुखलाभ। (पा० यो० द० 2-42)

2.5.3 तप

तप का अर्थ है स्वयं को बेहतर अवस्था की प्राप्ति हेतु तत्पर रहना। विलासितापूर्ण जीवन का निर्वहन करते हुए योग के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। योग के मार्ग पर चलने पर कई तरह की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक कष्ट झेलने पड़ते हैं। योग के मार्ग पर चलने पर कई तरह की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अपने चरम लक्ष्य की प्रापि के लिए धैर्यपूर्वक मानसिक तथा शारीरिक कष्टों को सहते हुए लक्ष्य प्राप्त करना ही तप है। तप से शारीरिक तथा मन के विकार नष्ट होते है ।

2.5.4 स्वाध्याय

स्वाध्याय का अर्थ है स्व का अध्ययन अर्थात् 'आत्मा का अध्ययन'। स्वाध्याय व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व का अध्ययन है। हम प्रायः दूसरों के प्रति अधिक जगरूक रहते हैं और इसके आधार पर दूसरों की गणना करते रहते हैं। परन्तु हमें इससे कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। इससे हममें व्यर्थ का ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों का समावेश होता है। ये साधना में बाधक होते हैं।

स्वाध्याय का अभिप्राय है, अपनी विशेषताओं तथा कमजोरियों का ज्ञान करना । उनके प्रति सजगता विकसित करना। स्वाध्याय व्यक्ति को स्वयं के बारे में अधिक-से-अधिक जानने के लिए प्रेरित करता है। वह स्वयं को नकारात्मक वृत्तियों से दूर करने की कोशिश करता है। जिससे धीरे धीरे आपका अंत:करण निर्मल होता जायेगा।

जब तक हम स्वयं को जान नहीं लेते, तबतक हमारा मन पूरी तरह इन्द्रियों के वश में होता है। वह अपनी वृत्तियों के अनुसार चलता रहता है। अत: स्वाध्याय के माध्यम से हम अपनी वृत्तियों को जानते-समझते हैं तथा उसके निराकरण के उपाय ढूंढते हैं। स्वाध्याय सजग होने की पहली सीढ़ी है। अपने व्यवहार के प्रति सजगता से आपको पता चला जाएगा कि आप किन मनोवृतियों के शिकार हैं। ये मनोवृत्तियाँ हमें आत्म-साक्षात्कार से रोकती है। स्वाध्याय की सतत् साधना से साधक आत्मसाक्षात्कार तक जाने में सक्षम हो जाता है।

2.5.5 ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर प्राणिधान का तात्पर्य है उच्चतम चेतना के प्रति पूर्ण विश्वास या समर्पण। योग में ईश्वर शब्द क अभिप्राय भगवान या सृष्टि के रचयिता से नहीं है। वास्तव में राजयोग में भगवान की अवधारणा है ही नहीं। यहाँ ईश्वर शब्द का उपयोग उसके लिए है जो नश्वर न हो। जो नित्य हो तथा हर जगह विद्यमान हो ।

ईश्वर प्रणिधान एक ऊर्जा है, जो साकार रूप लेती है। यह सृष्टि उसी ऊर्जा का व्यक्त स्थूल रूप है। इसका अव्यक्त या निराकार रूप को हम योग चेतना के नाम से जानते हैं। इसका स्थूल रूप नाशवान् है। इसका अव्यक्त सूक्ष्म रूप अविनाशी, अजन्मा और असीम है। पतंजलि ने इसे ईश्वर के नाम से संबोधित किया है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है

इस उच्चतम चेतना के प्रति पूर्णविश्वास। जब इस उच्चतम चेतना के प्रति विश्वास इढ़ हो जाये जब इस उच्चतम चेतना के प्रति विश्वास ढ़ृढ हो जाए तथा किसी परिस्थिति में मन दोलायमान न हो, इससे ईश्वर प्राणिघान की अवस्था होती है।

2.5.6 नियम का महत्व

नियम पूर्णतः आत्मनिष्ठ अभ्यास है। यह उस व्यवहार से जुड़ा है जिसमें हम दूसरे के साथ व्यवहार का आकलन करते हैं। नियम हमारे स्वयं के व्यवहार को निर्देशित करता है।

अष्टांग योग की व्यवस्था का मूल तत्व है कि बाहर से सब कुछ समेटते चले जाना और भीतर की ओर यात्रा प्रारंभ करना है।

नियम की साधना का फल के रूप में शुद्ध तन और शुद्ध मन के रूप में प्राप्त होता है। और शरीर को तप का पालन करने योग्य बनाता है। इससे तन तेजस्वी बनता है तो मन की संकल्प शक्ति में बृद्धि होता है।

2.6 सारांश (Summary)राजयोग के सोपान अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित हैं, जिसको अपना कर साधक योग के दूरूह मार्ग पर चलने के लायक हो जाता है।

इसके बाद हम इस पाठ के अंतर्गत यम तथा नियम को विस्तारपूर्वक समझें। यम तथा नियम अष्टांग योग की प्रथम तथा द्वितीय सीढ़ियाँ हैं। यह मनुष्य को योग साधना के उच्च स्तर के लिए तैयार करता है।

इस प्रकर इस पाठ को पढ़कर निश्चय ही छात्रों राजयोग को समझ गए होगें। साथ-हो यम-नियम के सोपानों को समझकर राजयोग को जानने में सफल होंगे।

2.7 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)
1.यम क्या है? इसकी अंगों पर सविस्तार प्रकाश डाले ।
What is Yam? Lighten its parts in detail.
2.नियम को विस्तार से बताएँ ।
Explain Niyam in detail?
between